

---

## इकाई 1: हिंदी नाटक : स्वरूप और विकास

---

### इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक
  - 1.2.1 प्रत्यक्षता
  - 1.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता
  - 1.2.3 सामूहिकता
  - 1.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक
  - 1.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक
  - 1.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश
  - 1.2.7 सजीवता
  - 1.2.8 संवादात्मकता
  - 1.2.9 तात्कालिकता
- 1.3 नाटक और रंगमंच का संबंध
- 1.4 नाटक और उपन्यास
- 1.5 नाटक के तत्व
  - 1.5.1 कथावस्तु
  - 1.5.2 पात्र
  - 1.5.3 परिवेश
  - 1.5.4 भाषा, शैली और संवाद
  - 1.5.5 अभिनेयता और मंचीयता
  - 1.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य
- 1.6 नाटक के प्रकार
- 1.7 हिंदी नाटक का विकास
  - 1.7.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक
  - 1.7.2 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
  - 1.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक
- 1.8 सारांश
- 1.9 शब्दावली
- 1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 1.0 उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी नाटक के स्वरूप के विषय में विस्तृत जानकारी दे सकेंगे;
- अन्य साहित्यिक विधाओं के संदर्भ में नाटक की विशेषताओं को पहचान सकेंगे;
- नाटक और उपन्यास में अंतर बता सकेंगे;
- नाटक के विभिन्न तत्वों की चर्चा कर सकेंगे;

- नाटक के विभिन्न प्रकारों को पहचान सकेंगे;
- हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों की विशेषताएँ बता सकेंगे।

### 1.1 प्रस्तावना

नाटक, साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में विशिष्ट विधा होती है और एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक प्रकार है। एकांकी का जन्म आधुनिक युग में हुआ और शिल्प तथा टेक्नीक की दृष्टि से हिंदी एकांकी का शिल्प पश्चिम से प्रभावित है। किंतु नाटक का अस्तित्व दुनिया भर के साहित्य में प्राचीन काल से मौजूद है। वह प्राचीन काल से मनुष्य का सहचर रहा है। अपार सुख-दुख के गहन क्षणों में जैसे मनुष्य की वाणी से अनायास कविता फूट पड़ी उसी तरह गहन भावों की शारीरिक मानसिक अभिव्यक्ति के लिए नृत्य और नाटक की शुरुआत हुई। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ साहित्य की उन्नति होती गई और महाकाव्यों तथा नाट्यकृतियों का सृजन हुआ। श्रेष्ठ रचनात्मक साहित्य के आने के बाद उसके कुछ सामान्य सिद्धांत निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार कविता और नाटक के रचना-सिद्धांतों की परंपरा विकसित हुई।

विभिन्न युगों में हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों के अनुरूप नाटक की रचना प्रक्रिया में बदलाव आते रहे और नाट्य सिद्धांतों में तथानुरूप परिवर्तन होते रहे। इस तरह नाटक ने आज जो स्वरूप ग्रहण किया है वह एक लंबी परंपरा और समय के साथ-साथ परंपरा में हुए आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम है। ऐसी स्थिति में हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास की चर्चा करते समय हमें प्राचीन और मध्ययुगीन नाट्य परंपरा को भी ध्यान में रखना होगा।

### 1.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक एक विशिष्ट साहित्यिक विधा है। यहाँ हम उसकी विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह जानकारी नाटक की रचना प्रक्रिया को समझने में सहायक होगी। साथ ही किसी भी नाट्य कृति के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए भी सही दिशा प्रदान करेगी।

#### 1.2.1 प्रत्यक्षता

साहित्य की अन्य विधाओं यानी कविता, कहानी और उपन्यास आदि को हम पढ़ या सुन सकते हैं जबकि नाटक को पढ़ने और सुनने के अतिरिक्त हम अपनी आँखों से देख भी सकते हैं। सभी साहित्यिक विधाओं का माध्यम शब्द होता है, किंतु नाटक में शब्द के साथ-साथ रूप भी समाहित होता है। अन्य साहित्यिक विधाएँ शब्दों द्वारा, कल्पना की सहायता से, हमारे हृदय अथवा कल्पना में भाव चित्र उपस्थित करती हैं, जबकि नाटक स्थिति-परिस्थिति को हमारे सामने साक्षात् दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम जीवन की घटनाओं को वास्तव में घटित होता देख रहे हैं। इंद्रियों के आधार पर पड़ने वाले इस प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो विभाग किए हैं—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। संस्कृत साहित्य में नाटक को भी काव्य ही माना गया है और उसे दृश्य काव्य की श्रेणी में रखा गया है। इस तरह कविता और नाटक का भेद 'श्रव्य काव्य' और 'दृश्य काव्य' के रूप में किया गया है। 'श्रव्य काव्य' के शब्द उन दिनों की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए हैं जब साहित्य में लिखित परंपरा की बजाए मौखिक (गायन की) परंपरा का प्रचलन अधिक रहा होगा। प्राचीन समय में कविता जन समुदाय के समक्ष गाकर सुनाई जाती थी। उदाहरण के लिए, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदिकाव्य 'रामायण' को लव-कुश आरंभ

में गाकर ही सुनाते हैं। माना जाता है कि उन्होंने इसे भगवान रामचंद्र के दरबार में गाकर सुनाया था।

नाटक को 'दृश्य काव्य' इसलिए कहा गया कि दर्शक विशेषतः उसे आँख और कान दोनों इंद्रियों से ग्रहण करता है। उसे सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता है। आज जब साहित्य की काव्य के अतिरिक्त अन्य अनेक विधाएँ सामने आ गई हैं और वह मुद्रित होकर सुगमता प्राप्त होने के कारण सुनने की बजाए पढ़ने की वस्तु अधिक हो गया है तब इसे 'श्रव्य काव्य' कहना बहुत तर्क संगत नहीं रहा। इसी तरह आज नाटक को 'दृश्य काव्य' की बजाए दृश्य विधा कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि आज नाटक को गद्य साहित्य का प्रमुख भेद माना जाता है। यद्यपि पद्य नाटक और गीति नाट्य भी नाटक के प्रकार हैं, किंतु अब मुख्य रूप से नाटक गद्य की ही एक विधा मानी जाती है।

### 1.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता

ऊपर हम कह चुके हैं कि अन्य साहित्यिक विधा शब्दों के माध्यम से हमारी कल्पना में बिंब या भावचित्र उत्पन्न करती है जिसे हम अनुभव करते हैं। किंतु नाटक हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है। इसमें हमें कल्पना का उतना सहारा नहीं लेना पड़ता जितना अन्य विधाओं में। स्वाभाविक है कि जो हम सुनते या पढ़ते हैं उसकी तुलना में जो हम देखते हैं उसका प्रभाव ज्यादा होता है। यह लोक सिद्ध अनुभव है कि प्रत्यक्ष और मूर्त का प्रभाव अप्रत्यक्ष और अमूर्त की अपेक्षा अधिक होता ही है। यही कारण है कि नाटक की प्रभाव क्षमता अन्य किसी भी विधा से अधिक होती है। इस अंतर को हम आधुनिक युग में रेडियो और टेलीविजन की तुलना से समझ सकते हैं।

### 1.2.3 सामूहिकता

नाटक में भाषा के माध्यम से लेखक जो कुछ दर्शकों तक पहुँचाना चाहता है उसे अभिनेता अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक में सामाजिकता अन्य विधाओं से अधिक होती है। कविता, कहानी या उपन्यास को हम अकेले में बैठकर पढ़ सकते हैं, पर नाटक का आस्वादन एकांत में नहीं किया जा सकता। यह एक सामूहिक कला है जिसमें लेखक के अलावा रंगकर्मियों (निर्देशक, अभिनेता मंडली, मंच-सज्जाकार, प्रकाश व्यवस्थापक, संगीत वाद्यकार आदि) की पूरी-पूरी सक्रिय भूमिका होती है।

### 1.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक

दर्शक इस सामूहिक कला के अनिवार्य अंग होते हैं। लेखक तथा रंगकर्मियों के संपूर्ण प्रयास दर्शक को केंद्र में रख कर चलते हैं। कोई नाट्य प्रस्तुति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसकी सफलता और सार्थकता सिद्ध करने के लिए दर्शक समूह की उपस्थिति अनिवार्य है।

दर्शकों के संबंध में खास बात यह है कि नाटक देखने आए विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते हैं। उनके आयु-वर्ग, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक स्तर में काफी विविधता होती है। इसी कारण उनके सोच-विचार, पसंद-नापसंद और रुचियाँ भी एक दूसरे से अलग-अलग हो सकती हैं। लोग एक साथ बैठकर नाट्य प्रस्तुति को देखते हैं। दर्शक समूह की इस विशिष्टता का असर नाटक की रचना प्रक्रिया पर पड़ता है। वैविध्यपरक दर्शक समूह को एक साथ प्रभावित करने के लिए नाटक में तीव्र प्रभावोत्पादकता नितांत अपेक्षित होती है। नाटक में प्रभावोत्पादन की क्षमता लाने के लिए लेखक तथा रंगकर्मी दोनों का योग आवश्यक है।

### 1.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक

नाटक में दर्शक की अहम् स्थिति एक अन्य दृष्टि से भी होती है। दर्शकों का व्यवहार नाट्य प्रदर्शन को प्रभावित करता है। रंगशाला (नाट्यगृह) में बैठे दर्शकों की प्रस्तुति को देखकर जो भी तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है वह अभिनेताओं को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित अवश्य करती है। इस तरह दर्शक और प्रस्तोता के बीच स्थापित होने वाला प्रत्यक्ष तादात्म्य नाट्य प्रस्तुति का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। इस दृष्टि से नाटक आधुनिक विज्ञान के युग के विभिन्न तकनीकी दृश्य माध्यमों की तुलना में विशिष्ट होता है। सिनेमा या टेलीविजन देख रहे दर्शक और नाटक देख रहे दर्शक में यही अंतर होता है। प्रस्तुत करने वाले और देखने वाले के बीच जीवंत संपर्क एक दूसरे को खास तरह से प्रभावित करता है। यही कारण है कि नाटक जन सामान्य को अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में ज्यादा प्रभावित कर पाता है। नाटक की इस विशेषता के आधार पर ही संस्कृत के आचार्यों ने नाटक की अन्य विधाओं की तुलना में श्रेष्ठ बताते हुए कहा है— 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्।' अर्थात् काव्यों में नाटक सबसे अधिक रमणीय होता है।

### 1.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश

सामूहिक कला होने के कारण नाटक में विभिन्न कलाओं का अनिवार्य समावेश रहता है। नाटक देखते समय हमारा ध्यान अक्सर केवल अभिनेताओं की ओर जाता है। किंतु अभिनेताओं के अलावा और भी कई व्यक्ति होते हैं जो नाटक की प्रस्तुति में सहायता करते हैं। नाटक के लिए उपयुक्त रंगमंच की सजावट करने के लिए स्थापत्य कला और चित्रकला आदि में कुशल व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। पात्रों की वेशभूषा तथा शृंगार के लिए खास तरह के विशेषज्ञ अपेक्षित होते हैं। गीत, नृत्य आदि की प्रस्तुति में सहायता के लिए संगीत वाद्य के क्षेत्र में कुशल लोगों की जरूरत होती है। मंच पर प्रकाश तथा ध्वनि-प्रभाव, माइक आदि की व्यवस्था के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में बिजली के प्रकाश तथा वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग के कारण प्रकाश व्यवस्था की संपूर्ण नाट्य प्रभाव में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि मंच के किस भाग पर कब, कितना और किस ढंग का प्रकाश दिया जाए कि अभिनेताओं का अभिनय अधिक से अधिक यथार्थ, सजीव और प्रभावपूर्ण हो सके। पर्दे के पीछे से सक्रिय प्रकाश व्यवस्थापक अपने कार्य में उतनी ही लगन और निष्ठा के साथ संलग्न रहता है जितना हमारी आँखों के सामने मंच पर उपस्थित अभिनेता। नाट्य प्रस्तुति को सफल बनाने में उसका भरपूर योगदान होता है।

### 1.2.7 सजीवता

नाटक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें जीवन की वास्तविकता का अनुकरण जीते-जागते साधनों द्वारा किया जाता है। अन्य विधाएँ जीवन का अनुकरण शब्दों के माध्यम से उसका वर्णन करके करती हैं जबकि नाटक में घटनाओं को घटित होते दिखाया जाता है। अभिनेता वेशभूषा और रूप सज्जा द्वारा पात्रों का रूप धारण करते हैं और उनके आचार-व्यवहार तथा बातचीत आदि का अनुकरण करते हैं। इस तरह नाटक में जीवन के कार्य व्यापारों की प्रत्यक्ष क्रियाशील सजीवता होती है, उनका विवरण नहीं होता। प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा है— 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' (दशरूपक 1/7)। यह अवस्था शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की होती है। इसलिए अनुकरण चार प्रकार के अभिनय— आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य द्वारा किया जाता है। इस तरह नाटक में अभिनय की प्रधानता होती है या फिर यह भी कहा जा सकता है कि अभिनय से ही नाटक बनता है।

### 1.2.8 संवादात्मकता

नाटक एक संवादात्मक कला है। यहाँ संपूर्ण स्थिति का उद्घाटन पात्रों के संवादों तथा कार्यकलाप से होता है। अन्य विधाओं में लेखक स्वयं भी विवरण दे सकता है, पृष्ठभूमि के संकेत कर सकता है, पात्रों के कार्यों पर टिप्पणी कर सकता है, किंतु नाटक में ऐसा नहीं होता। नाटककार अपनी ओर से केवल रंग संकेत देता है जो दृश्य-सज्जा वातावरण, पात्रों के रूपाकार, अभिनय आदि से संबंधित होते हैं। प्रमुख कार्य-व्यापार संवादों के माध्यम से ही चलता है।

### 1.2.9 तात्कालिकता

हम कह चुके हैं कि साहित्य की अन्य विधाएँ पढ़ने के लिए होती हैं किंतु नाटक देखने के लिए। पढ़ते समय यदि कोई बात समझ में नहीं आती या ध्यान से चूक जाती है तो उसे दोबारा पढ़ा जा सकता है या रुक-रुक कर कई अंतरालों में पढ़ा जा सकता है। किंतु नाटक में एक बार प्रस्तुत स्थिति अथवा संवाद दोहराया नहीं जाता। दर्शक को उसे तुरंत समझना होता है। अतः स्थिति, भाषा, शैली, संवाद या प्रस्तुति में तत्काल संप्रेषणीयता की क्षमता अपेक्षित होती है।

#### बोध प्रश्न-1

क) प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के कौन से दो विभाग किए? नाटक इनमें से किसके अंतर्गत आता है ?

.....

.....

.....

ख) क्या आज भी नाटक को काव्य की श्रेणी में रखा जाता है? यदि नहीं तो क्यों?

.....

.....

.....

ग) दर्शक नाटक की प्रस्तुति को किस तरह प्रभावित करते हैं?

.....

.....

.....

## 1.3 नाटक और रंगमंच का संबंध

दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की रचना प्रक्रिया की अपनी मौलिक विशेषताएँ होती हैं। रंगमंचीयता अथवा प्रस्तुति पक्ष नाट्य रचना प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नाटक साहित्य की वह विधा है जिसकी सफलता की जाँच रंगमंच पर होती है। जो रचना अभिनेय नहीं यानी जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत न किया जा सकता हो वह नाटक नहीं कही जा सकती, भले ही वह संवादों के माध्यम से क्यों न प्रस्तुत की गई हो। इस दृष्टि से नाटक और रंगमंच में घनिष्ठ संबंध होता है। ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि रंगमंचीय परिस्थितियों का बदलाव नाटक को प्रभावित करता है और नाट्य लेखन की प्रवृत्तियों का बदलाव रंगमंच को बदल देता है। रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन सामाजिक,

आर्थिक स्थितियों पर आधारित रहता है। यही कारण है कि नाटक का स्वरूप हर युग में बदलता रहता है। 16वीं शताब्दी में इंग्लैंड में रंगमंच काफी लोकप्रिय था। परिणामस्वरूप उस युग में शेक्सपियर जैसे प्रतिभा संपन्न नाटककार हुए और उन्होंने अपूर्व नाटकों की रचना की जो आज भी विश्व साहित्य की अमूल्य धरोहर बने हुए हैं। किंतु कुछ समय बाद इंग्लैंड में थियेटर में तालेबंदी हो गई। 40 वर्ष तक थियेटर बन्द रहने के कारण रंगमंचीय गतिविधियाँ ठप्प रहीं। बाद में जब रेस्टोरेशन युग में रंग कर्म फिर से शुरू हुआ तो नाटक की शक्ल ही बदली हुई थी।

## 1.4 नाटक और उपन्यास

नाटक तथा उपन्यास दोनों ही गद्य विधाएँ आज बहुत लोकप्रिय हैं। यहाँ हम दोनों की तुलना प्रस्तुत कर रहे हैं। नाटक की तुलना में उपन्यास काफी नई विधा है। नाट्य लेखन और प्रस्तुति की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। किंतु हिंदी में उपन्यास की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई है। अंग्रेजी साहित्य के परिचय के माध्यम से पहले पहल बंगला में उपन्यास लेखन आरंभ हुआ। बंगला के माध्यम से वह हिंदी में आया। स्वरूप की दृष्टि से इन दोनों में कुछ समानताएँ हैं जैसे दोनों के लिए कथानक, पात्र आदि अपेक्षित होते हैं। किंतु नाटक और उपन्यास अपनी मूल प्रकृति संवेदना और प्रभाव में भिन्न होते हैं। उपन्यास की रचना केवल पढ़ने के लिए होती है जबकि नाटक की रचना रंगमंच पर अभिनय के लिए होती है। इसलिए उपन्यास तो अपने आप में पूर्ण होता है जबकि नाटक रंगशाला में प्रस्तुत होकर ही पूर्ण होता है। उपन्यास का कथानक प्रायः अतीत में घटित होता है। अतः उपन्यास की भाषा में ज्यादातर भूतकालिक क्रियाएँ ही प्रयुक्त होती हैं। नाटक में घटनाएँ अतीत की होने पर भी वर्तमान में हमारी आँखों के समक्ष घटित दिखाई जाती हैं। अतः यहाँ विवरण या वर्णन मात्र न होकर पुनः सृजन होता है। उपन्यासकार के पास केवल शब्द ही होते हैं। नाटककार के शब्दों की पूर्ति और पुष्टि अभिनय द्वारा की जाती है जिससे नाटक में सजीवता का समावेश होता है। इस तरह दोनों में की कथावस्तु भाषा शैली, पात्र आदि तत्व होने के बावजूद रूप रचना की विशिष्टता के कारण इन तत्वों में भी एक स्तर पर भेद हो जाता है।

### आकार

उपन्यास के संबंध में आकार की कोई सीमा नहीं है। वह हजार पृष्ठों का भी हो सकता है और सौ-डेढ़ सौ पृष्ठों का लघु उपन्यास भी। उसे हम लगातार भी पढ़ सकते हैं और रुक कर यानी उसे हम एक बैठक में भी पढ़ सकते हैं और कई सप्ताह का समय लगाकर धीरे-धीरे भी पढ़ सकते हैं। किंतु नाटक को हम एक बार में ही देखते हैं। नाट्यगृह में हम दो तीन घंटे से अधिक समय के लिए नहीं बैठ सकते इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि नाटक की घटनाएँ गति के साथ आगे बढ़ें। दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए उनमें जिज्ञासा, कौतूहल और आकस्मिकता निरंतर बनी रहे। यदि दर्शक ऊब जाएँगे और बीच में ही उठकर जाने लगेंगे तो पूरा नाट्य कर्म ही असफल हो जाएगा। यदि हम उपन्यास को पसंद नहीं करते और उसे अधूरा छोड़ देते हैं तो इसका किसी अन्य व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु यदि नाटक के दर्शक अधूरी प्रस्तुति के बीच में उठकर चले जाते हैं (भले ही सब न जाएँ पर यदि अधिकांश चले जाते हैं) तो रंगकर्मियों पर अपने असफल हो जाने का गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उनका मनोबल ही गिर जाता है। नाटक की रचना प्रक्रिया में इस तथ्य का ध्यान रखा जाना अपेक्षित होता है।

## पात्र

नाटक के पात्रों के बारे में लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता। उनका चरित्र उनके संवादों और उनके व्यवहार से उद्घटित होता है। किसी पात्र के अपने संवादों से तो उसके चरित्र की जानकारी मिलती ही है अन्य पात्रों द्वारा कही गई बातों से भी उसके चरित्र का पता चलता है। पात्रों के क्रियाकलाप और शारीरिक चेष्टाएँ भी उनके चरित्र को प्रस्तुत करती हैं। उपन्यासकार को दोहरी सुविधा होती है। पात्रों के कथोपकथन तथा कार्यकलाप के द्वारा उनके चरित्र के उद्घाटन के साथ-साथ वह चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक पद्धति भी अपनाता है यानी पात्रों के चरित्र का विश्लेषण स्वयं भी करता है। वह जब आवश्यक समझता है तब स्वयं नाटक के पात्रों में शामिल हो जाता है और उनके भाव-विचार के लिए उनके संबंध में टीका-टिप्पणी करता चलता है। इस तरह नाटककार परोक्ष या नाटकीय ढंग काम में लाता है और उपन्यासकार परोक्ष के साथ-साथ साक्षात् या विश्लेषणात्मक ढंग भी।

## रूप-रचना

रूप-रचना के अंतर के कारण उपन्यास और नाटक के संवादों में भी भेद हो जाता है। हम कह चुके हैं कि नाटककार शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। अतः भाषा के लिखित रूप की बजाए उसका मौखिक रूप प्रधान होता है। भाषा के मौखिक रूप में स्वर का उतार-चढ़ाव, लहजा, शारीरिक भाव-भंगिमा आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए नाटक में वार्तालाप कहीं-कहीं शब्दों से ज्यादा उसकी प्रस्तुति पर आश्रित होता है। वाक्य कभी-कभी अपूर्ण भी होते हैं तथा प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर संवाद एक हद तक लंबे भी हो सकते हैं। उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होती है। इसलिए लिखित भाषा की सभी विशेषताएँ वहाँ आ जाती हैं।

उपन्यासकार अपने पात्रों की मनःस्थिति को उभारने के लिए संवादों के अलावा कभी-कभी पत्र-व्यवहार का भी सहारा लेता है। पात्रों के आपसी पत्र उनके चरित्र-चित्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई बार ये पत्र कई-कई पृष्ठों के भी होते हैं। किंतु नाटककार के पास यह सुविधा नहीं होती। कभी-कभी किसी विशेष सूचना के लिए या कथा विकास में आकस्मिक मोड़ लाने के लिए यदि वह पत्र का इस्तेमाल करता भी है जैसे ऐतिहासिक नाटकों में एक राजा से दूसरे राजा के पास दूत द्वारा पत्र भेजते हैं और इन पत्रों को मंच पर पढ़ा भी जाता है, तो यह पत्र बहुत ही संक्षिप्त होना चाहिए।

## बोध प्रश्न-2

नीचे दिए गए वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

- क) i) नाटक और रंगमंच में ..... होता है।  
ii) नाटक का स्वरूप हर युग में ..... रहता है।  
iii) नाटक और उपन्यास दोनों ही ..... साहित्य की विधाएँ हैं।
- ख) i) उपन्यास में आकार की कोई सीमा नहीं होती किंतु नाटक में यह सीमा होती है। क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

### 1.5 नाटक के तत्व

नाट्य रचना अथवा किसी भी साहित्यिक कृति को किन्हीं निश्चित तत्वों के भीतर “फिट” करके मूल्यांकित करना बहुत आसान और सदैव उपयुक्त नहीं होता। कारण, प्रतिभावान साहित्यकार नियमों में पूरी तरह बँध कर नहीं चलता, और फिर समय तथा स्थितियों के बदलाव के साथ-साथ रचना दृष्टि में भी बदलाव आते रहते हैं। रचनाकार नए से नए प्रयोग करते रहते हैं। फिर भी विविध साहित्यिक विधाओं की कुछ संरचनात्मक विशिष्टताएँ होती हैं जो एक दूसरे से अलग पहचान बनाती हैं तथा प्रत्येक विधा को उसका अपना निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं। कृति के विश्लेषण विवेचन के सामान्य मानदंड निर्धारित करने में इन संरचनागत विशिष्टताओं को आधार बनाया जाता है। रचनाकार द्वारा किए गए नए प्रयोगों को भी इन संरचनागत विशिष्टताओं के भीतर और बाहर जाँचा-परखा जाता है।

हम बता चुके हैं कि नाटक खेलने की परंपरा दुनिया भर में प्राचीन काल से चली आ रही है। यही कारण है कि अधिकांश देशों के प्राचीन साहित्य में नाट्य लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ तथा नाट्य सिद्धांतों की चर्चा काव्य सिद्धांतों की चर्चा के साथ-साथ ही शुरू हो गई। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि नाटक का स्वरूप परंपरा और प्रयोग के आधार पर निर्मित और रूपांतरित होता रहता। हिंदी नाटक की स्थिति भी ऐसी ही है इसके स्वरूप निर्माण में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों का योग रहा है। अतः भारतीय और पाश्चात्य नाट्य तत्वों की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। भारतीय नाट्य सिद्धांत संस्कृत के नाटकों के आधार पर निर्मित हुए थे तथा पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का आधार यूनानी नाटक थे।

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन अनिवार्य तत्व माने हैं— वस्तु, नेता और रस। वस्तु का अर्थ है कथावस्तु, नेता यानी पात्र और रस यानी रचना से उत्पन्न होने वाले प्रभाव या उसकी अनुभूति। अर्थात् रचनाकार द्वारा अनुभूत सत्य की दर्शक अथवा पाठक को प्रतीति अथवा अनुभूति।

पाश्चात्य आचार्यों ने नाटक के छः तत्व माने हैं : कथावस्तु, पात्र, देशकाल, संवाद, शैली और उद्देश्य। इसके अलावा वहाँ संकलन—त्रय यानी नाटक में स्थान, समय और काल की एकता पर भी जोर दिया गया है।

पश्चिम में सुखांत और दुखांत दो तरह के नाटकों का प्रचलन रहा है जो क्रमशः कामदी (Comedy) और त्रासदी (Tragedy) कहलाते हैं। किंतु संस्कृत नाटक में त्रासदी को सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकार नहीं किया गया था। नायक का पतन अथवा उसकी मृत्यु दिखाना भारतीय नाट्य दृष्टि के अनुकूल न था। जबकि पश्चिम में त्रासदी को कामदी से श्रेष्ठ और बृहत्तर रचना स्वीकार किया गया और उसके माध्यम से मानवीय भावों के परिष्कार की संकल्पना की गई।

रचना—दृष्टि के इस भेद के अनुरूप ही पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों में अलग-अलग तरह की विशिष्टताएँ विकसित हुईं। पश्चिमी नाटक में द्वंद्व अथवा संघर्ष को प्रधानता दी गई और भारतीय नाटक में रसानुभूति को।

हिंदी नाटककारों ने न तो भारतीय नाट्य सिद्धांतों को पूर्णतया स्वीकार किया है, न पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का अंधानुकरण ही किया है। दोनों ही दृष्टियों को अपनाते हुए उन्होंने स्थिति और प्रसंग के अनुकूल अपने नाटकों की रचना की है। इस तरह नाटक के तत्वों के भीतर दोनों नाट्य दृष्टियों का समावेश हुआ है। साथ ही परंपरा से छूट लेकर नए प्रयोग भी किए गए हैं।

### 1.5.1 कथावस्तु

कथानक का अर्थ है घटनाओं या कार्य-व्यापार की योजना। लेखक अपनी कथावस्तु का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से कर सकता है। समाज, राजनीति, इतिहास, मनोविज्ञान आदि किसी को भी वह अपने नाटक का विषय बना सकता है। हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक में जीवन की क्रियाशील सजीवता होती है। जीवन की घटनाएँ उसमें दृश्य रूप में प्रस्तुत होती हैं। ऐसी स्थिति में नाटककार जिस कथ्य को चुनता है उसका संपूर्ण घटना-व्यापार दृश्य रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। नाटक और उपन्यास की तुलना के दौरान हमने बताया था कि उपन्यास का पाठक उसे कई बार बीच में से छोड़-छोड़ कर भी पढ़ सकता है किंतु नाटक एक बार में ही देखा जाता है। अतः उसका समय दो-तीन घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में नाटककार अपने कथ्य का कुछ अंश दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है तथा कुछ की सूचना देता है। जो स्थितियाँ प्रमुखतया दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकती हैं उन्हें दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। शेष आवश्यक स्थितियों और कार्यकलापों की सूचना पात्रों द्वारा प्रस्तुत कराता है इस तरह कथानक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है, दृश्य घटनाओं के माध्यम से और सूच्य घटनाओं के माध्यम से। कथानक दो प्रकार का हो सकता है – आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथानक का संबंध नाटक के मुख्य कार्य या उद्देश्य से होता है। यह कथा नाटक के प्रधान पात्रों से संबंधित होती है। प्रासंगिक कथा का अर्थ है प्रसंगवश आयी हुई या गौण कथा। इस कथा का सीधा संबंध नायक अथवा नायिका से न होकर अन्य पात्रों से होता है किंतु प्रासंगिक कथा नाटक की मूल कथा यांनी आधिकारिक कथा से सर्वथा स्वतंत्र नहीं होती बल्कि यह मूल कथा की गति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

कथावस्तु में कार्य व्यापार के समुचित नियोजन के लिए प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों की व्यवस्था की थी। इस तरह फल की प्राप्ति की इच्छा से किए गए कार्य की पाँच अवस्थाएँ मानी गईं (आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम) कथानक को पाँच भागों में विभक्त किया गया। बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक अर्थ प्रकृतियाँ वस्तुतः नाटक के कार्य-व्यापार की सिद्धि के उपायों या साधनों से संबंध रखती हैं।

पश्चिमी नाटक में भी कार्य की छः अवस्थाएँ मानी गई हैं जो कथावस्तु के

- 1) प्रमुख कार्य व्यापार को प्रकट करके (Exposition)
- 2) संघर्ष का सूत्रपात करती हुई (Rise and development of conflict)
- 3) कार्य को चरम सीमा की ओर बढ़ाती हैं (Crisis & falling of action)
- 4) चरम सीमा पर पहुँचकर संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और संघर्ष के दो पक्षों में से एक के हास की शुरुआत होने लगती है और दूसरे की सफलता की संभावना बढ़ने लगती है।
- 5) यह अवस्था भयंकर अंत (Catastrophe) के रूप में समाप्त होती है।

कथावस्तु में कार्य-व्यापार और घटनाओं के नियोजन की यह व्यवस्था वस्तुतः समग्र नाट्य प्रभाव को दृष्टि में रखकर की गई थी। आधुनिक नाटककार ने इसे स्वीकार नहीं किया है। फिर भी वह अपने कथा सूत्रों को इस ढंग से अवश्य पिरोता है कि समग्रता

में प्रभाव की अन्विति उत्पन्न हो सके। इसलिए आज नाटक में कार्य-व्यापार की तीन स्थितियाँ महत्वपूर्ण होती हैं— 1) आरंभ 2) विकास और 3) परिणति अथवा अन्त।

### बोध प्रश्न-3

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर चार-पाँच पंक्तियों में दीजिए।

क) कथावस्तु के दो प्रकार कौन से हैं? उनसे आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

ख) नाटक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है। दोनों तरह की घटनाओं के बारे में बताइए।

.....

.....

.....

.....

ग) कथा विकास की तीन स्थितियाँ कौन सी हैं?

.....

.....

.....

.....

### 1.5.2 पात्र

पात्र नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक के अन्य सभी तत्व पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं। उनके आचार व्यवहार और वार्तालाप से नाटक की कथावस्तु निर्मित होती है। नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है और प्रधान स्त्री पात्र नायिका। नायक और नायिका के अतिरिक्त नाटक में मुख्य पात्र भी होते हैं जिनमें से कुछ नायक के सहयोगी पात्र होते हैं और कुछ प्रतिकूल अथवा विरोधी पात्र। प्रमुख विरोधी पात्र खलनायक या प्रतिनायक कहलाता है। इन पात्रों के अलावा एक और विशिष्ट पात्र नाटकों में होता है जिसे विदूषक कहते हैं। विदूषक भारतीय तथा पश्चिमी दोनों ही नाट्य परंपराओं में मौजूद है। अंग्रेजी में इसे Clown कहा जाता है। शेक्सपियर के नाटकों में इसे Fool भी कहा गया है। विदूषक हास्य व्यंग्य की सृष्टि के अलावा समग्र नाट्य व्यापार में प्रमुख भूमिका निभाता है। अपने बेडौल रूपाकार से और हंसोड़ स्वभाव से दर्शकों का मनोरंजन करने के अलावा वह नायक का मित्र और सहयोगी होता है। उसकी भूलों पर व्यंग्य करता है और जरूरत के वक्त उसकी मदद करता है। आधुनिक नाटकों में विदूषक को एक अलग पात्र के रूप में प्रस्तुत करना जरूरी नहीं रह गया है। प्रधान या गौण पात्रों में से किसी से भी विदूषक का कार्य पूरा करा लिया जाता है। बहुत से नाटकों में विदूषक की भूमिका होती ही नहीं है।

पात्रों की संख्या के संबंध में नाटक में कोई निश्चित नियम नहीं होता। कथावस्तु की आवश्यकताओं के अनुरूप पक्षों की योजना की जाती है। इतना ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि उतने ही पात्र रखे जाएँ जितने कार्य-व्यापार के विकास के लिए जरूरी हों। कोई भी पात्र फालतू प्रतीत नहीं होना चाहिए। इसी तरह पात्रों की संख्या इतनी अधिक न हो जाए कि नाटक के समग्र प्रभाव में विघ्न पड़े अथवा रंगमंच पर पात्रों की भीड़-भाड़ दिखाई दे। घटनाओं की जरूरत के हिसाब से ही पात्र होने चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि पात्रों के कार्य से कथानक विकसित हो और वे कथानक के अनिवार्य अंग हों।

नाट्य शास्त्र में नायक के विशिष्ट उदात्त गुणों की चर्चा की गई है। पश्चिम की प्राचीन नाट्य परंपरा भी नायक में श्रेष्ठ गुणों की अपेक्षा करती है। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की बंदिश को स्वीकार नहीं करता। महान नायक की परिकल्पना को झटकते हुए सामान्य मानवीय दुर्बलताओं का समावेश नायक में कराया गया है। यथार्थवादी नाट्य दृष्टि तथा विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी विचारधाराओं के प्रभावस्वरूप आज नायक का स्थान प्रधान पात्र ने ले लिया है।

### 1.5.3 परिवेश

परिवेश नाटकों का महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक में प्रस्तुत घटनाएँ वर्णित न होकर प्रत्यक्ष रूप में सामने आती हैं। कथानक चाहे प्राचीन काल से संबद्ध हो या समसामयिक जीवन से, नाटक में वह वर्तमान के रूप में ही दृश्य और मूर्त होता है। अतः जिस समय, समाज और परिस्थिति को लिया गया हो वह हमारे सामने साकार हो उठनी चाहिए। उस काल-खंड विशेष का समग्र परिवेश, उसकी सभ्यता-संस्कृति, आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन और वैचारिक सरोकार की जीवंत अनुभूति नाट्य प्रस्तुति के माध्यम से होनी चाहिए। साथ ही उनकी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता भी स्थापित होनी चाहिए। परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश विन्यास, भाषा, संवाद, शैली, मंच-सज्जा आदि सभी के द्वारा की जाती है और थोड़ी देर के लिए हम उस नाटक के समय, समाज और स्थिति में प्रवेश कर लेते हैं। देश काल या परिवेश की सृष्टि जितनी उपयुक्त होगी नाटक उतना ही सार्थक होगा। इस खंड में आप जयशंकर प्रसाद का नाटक 'स्कन्दगुप्त' पढ़ेंगे। आप गौर करेंगे कि इस नाटक का समस्त वातावरण मौर्य तथा गुप्त कालीन भारतीय समाज को प्रस्तुत करता है। साथ ही भारतीय मुक्ति संग्राम के सांस्कृतिक-सामाजिक नवजागरण के परिवेश की भी सृष्टि करता है।

### 1.5.4 भाषा, शैली और संवाद

#### भाषा

नाटक में भाषा को बड़ा ही गंभीर दायित्व वहन करना पड़ता है। दृश्य विधा के कारण नाटक में हमारा भाषा से जीवित साक्षात्कार होता है। भाषा के लिखित रूप के बजाए यहाँ उसके मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लिखित भाषा और मौखिक भाषा के स्वरूप और प्रभाव में अंतर होता है। किंतु नाटक में दोनों का समन्वय अपेक्षित होता है। जो बात पात्र कहे वह दर्शक को तुरंत संप्रेषणीय हो, इसलिए उसमें स्पष्टता नितांत अपेक्षित है। इसके साथ ही उसमें सार्थक सारगर्भिता भी हो जो दर्शकों को प्रभावित कर सके। यानी किसी भी गंभीर या महत्वपूर्ण बात को पूरी सहजता और स्पष्टता से इस प्रकार कहा जाए कि उसकी बोलचाल की लय समाप्त न हो। दूसरी ओर भाषा से एक अन्य महत्वपूर्ण अपेक्षा और की जाती है कि वह पात्रानुकूल तथा परिवेश के उपयुक्त हो। यानी पात्रों के गुण, स्वभाव, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक हैसियत, मानसिक दशा के अनुकूल हो तथा जिस समय और समाज के वे पात्र हों उस समय और समाज के अनुरूप हो।

## शैली

किसी भी कृति में कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग शैली कहलाता है। शैली नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। कोई भी बात अपने आप में जितनी महत्वपूर्ण होती है उतना ही उसे प्रस्तुत करने का ढंग भी महत्वपूर्ण होता है। शैली में दो चीजों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है: लेखक का अपना व्यक्तित्व और उसके द्वारा चुना गया विषय। विषय के अनुरूप शैली गंभीर विवेचन युक्त, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक या व्यंग्यात्मक होती है। शैली के कई भेद होते हैं। उदाहरण के लिए प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, विचारपरक शैली, मनोविश्लेषणपरक शैली, भावनात्मक शैली, प्रसन्न शैली, पांडित्यपूर्ण शैली, तर्कपूर्ण शैली, खंडन-मंडन की शैली, बोलचाल की शैली।

यह आवश्यक नहीं कि लेखक एक ही प्रकार की शैली अपनाए। एक साथ कई तरह की शैलियों का प्रयोग भी किया जा सकता है या एक ही कृति में स्थान-स्थान पर अलग-अलग शैलियाँ भी प्रयुक्त हो सकती हैं। 'प्रसाद' जी के 'स्कन्दगुप्त' नाटक में तर्क-वितर्क पूर्ण शैली, व्यंग्यपूर्ण शैली, विश्लेषणात्मक शैली और भावनात्मक शैली साथ-साथ चलती रही हैं।

## संवाद

संवाद अथवा कथोपकथन को नाटक का प्राण कहा जाता है। उसके बिना नाटक हो ही नहीं सकता। हमारे जीवन में वाणी का जो महत्व है वही नाटक में संवादों का है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक अपनी ओर से भी कुछ कहता है किंतु नाटक का लेखक सब कुछ पात्रों के माध्यम से ही कहलाता है। पात्रों का व्यवहार और वाणी ही लेखक के कथ्य को दर्शक तक पहुँचाती है। पात्रों के चरित्र के उद्घाटन में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी पात्र के वचनों से उसके अपने बारे में परिचय मिलता है। साथ ही जो कुछ वह अन्य पात्रों के बारे में कहता है उससे अन्य पात्रों के बारे में जानकारी मिलती है। यह जानकारी सदैव ही सीधी और स्पष्ट नहीं होती। लेखक सदैव भाषा की अभिधा शक्ति से ही काम नहीं लेता वह व्यंजनात्मक और लाक्षणिक ढंग से भी बात कहलाता है।

संवाद को नाटक की कसौटी माना जाता है क्योंकि कथ्य की संप्रेषणीयता में संवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवाद इतने लंबे नहीं होने चाहिए कि भाषा के मौखिक रूप यानी बोलने की दृष्टि से अस्वाभाविक हो जाएँ और दर्शक ऊबने लगें। न ही इतने विचार बोझिल होने चाहिए कि अस्पष्ट हो जाएँ। उनमें बोलचाल की सहजता अपेक्षित है। यह अर्थ नहीं कि नाटक के संवाद केवल रोजमर्रा के साधारण वातालाप की तरह ही हों। गौर करने की बात यह है कि दैनिक जीवन में भिन्न-भिन्न स्थितियों और स्तरों पर हमारी बातचीत का स्वरूप और शैली भिन्न-भिन्न होते हैं। कार्यालय सार्वजनिक स्थल, मित्र मंडली, विचार गोष्ठी आदि जैसे विभिन्न स्थलों पर हमारी भाषा और वार्तालाप अलग-अलग होती है। इसी तरह, अध्यापक, डाक्टर, राजनीतिक नेता, संगीतज्ञ, साहित्यकार, न्यायाधीश, दार्शनिक विचारक, मजदूर, किसान, व्यापारी आदि विभिन्न सामाजिक हैसियतों के लोगों की बातचीत में अपने-अपने ढंग की विशिष्टता होता है और यदि नाटककार जीवन के इस वैविध्य को भली-भाँति देखता और अनुभव करता है तो उसके नाटकों में संवाद जीवन स्थितियों के अनुकूल और यथार्थ होंगे।

संवादों का प्रस्तुति पक्ष भी नाटक में बड़ी अहम भूमिका रखता है। लेखक को चुनना होता है कि समग्र कथ्य का कौन सा अंश दृश्य और मौखिक रूप में सर्वाधिक संप्रेषणीय और प्रभावपूर्ण हो सकेगा। संवादों में स्वाभाविकता के साथ-साथ, वाक्चातुर्य (यानी बातचीत की कुशलता) अपेक्षित है। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार काफी हद तक उसके संवाद होते हैं।

## संवादों के प्रकार

प्राचीन भारतीय नाटकों में तीन प्रकार के संवादों की चर्चा की गई है (1) सर्व श्राव्य (2) नियत श्राव्य (3) अश्राव्य। संवादों की ये तीन श्रेणियाँ मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों के सुनने की दृष्टि से निर्धारित की गई हैं। दर्शक इन तीनों तरह के संवाद सुनते हैं। सर्व श्राव्य मंच पर उपस्थित सभी पात्रों के सुनने के लिए होता है। नियत श्राव्य कुछ पात्रों के सुनने के लिए और अश्राव्य मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए न होकर केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है। इसे 'स्वगत कथन' भी कहा जाता है। इसका प्रचलन भारतीय नाटक और पश्चिमी नाटक दोनों में ही खूब रहा है। आजकल भी स्वगत भाषण शैली प्रचलित है। हालाँकि इसे मनोविज्ञान की दृष्टि से ज्यादा प्रभावपूर्ण नहीं माना जाता।

### 1.5.5 अभिनेयता और मंचीयता

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है इसलिए मंचीयता या रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होने की क्षमता नाटक का अनिवार्य अंग है। अन्य साहित्यिक विधाओं की रचना लिख दिए जाने पर पूर्ण हो जाती है किंतु नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। इस तरह नाटक और रंगमंच में घनिष्ठ संबंध होता है। जो कृति रंगमंच पर सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती अथवा जो दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण नहीं है उसे नाटक नहीं कहा जा सकता भले ही वह संवादों के रूप में क्यों न लिखी गई हो। इसलिए नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ होनी चाहिए। यद्यपि रंग-प्रस्तुति एक सामूहिक कला है किंतु इस सामूहिक कला के लिए मूल आधार नाटककार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अतः नाट्य कृति ऐसी होनी चाहिए कि दृश्य रूप में प्रस्तुत और प्रभावी हो सके। उसके पात्रों की योजना इस प्रकार हो कि अभिनेता उनका भली-भाँति अभिनय कर सके। अभिनय चार तरह का होता है :

- 1) आंगिक – शारीरिक चेष्टाओं द्वारा
- 2) वाचिक – वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर
- 3) सात्विक – विविध भावों की हाव-भाव द्वारा अभिव्यक्ति से
- 4) आहार्य – वेशभूषा, शृंगार और साज-सज्जा द्वारा

नाटक की स्थितियाँ और संवाद ऐसे होने चाहिए कि अभिनेता उन्हें सहज ही आत्मसात् कर सकें और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत कर सकें। संवाद बोल देना ही अभिनय की दृष्टि से पर्याप्त नहीं होता। उनके अनुकूल शारीरिक-मानसिक चेष्टाएँ और भावों का अभिनय अपेक्षित होता है। इसके लिए लेखक द्वारा दिए गए रंग-निर्देश सहायक होते हैं। रंग-निर्देश ऐसे हों कि अभिनय को अधिक सजीव बनाने में निर्देशक तथा रंग-कर्मियों के सहायक हो सकें। दृश्य परिवर्तन इस तरह न हो कि मंच पर साज-सज्जा को बार-बार बदलने की जरूरत पड़े। विभिन्न सुदूर स्थलों को एक के बाद एक करके मंच पर प्रस्तुत करने से गड़बड़ी पैदा हो सकती है। दृश्य संख्या भी बहुत अधिक न हो। अंक विभाजन और दृश्य विभाजन समुचित हो। आजकल बहुत से नाटककार बार-बार दृश्य परिवर्तन उपयुक्त नहीं समझते और केवल अंक परिवर्तन ही प्रस्तुत करते हैं। संकलन त्रय – यानी स्थान, काल और कार्य की एकता की योजना भी मंचन की सुविधा की दृष्टि से ही अपेक्षित मानी गई है। यद्यपि नाटककारों ने इस बंधन को सदैव स्वीकार नहीं किया। पश्चिम की इस संकल्पना को स्वयं शेक्सपियर ने ही नहीं माना।

### 1.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

किसी भी रचना के पीछे रचनाकार की रचना-दृष्टि निहित होती है। रचना जिस उद्देश्य अथवा उद्देश्यों को लेकर की जाती है अथवा रचनाकार उसके माध्यम से जो

कुछ कहना चाहता है वही उस रचना का प्रतिपाद्य होता है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्व अथवा उसकी मूल्यवत्ता निर्धारित होती हैं। उसमें निहित जीवनाभुव, मानवीय मूल्य और संवेदना ही उसकी प्रासंगिकता निर्धारित करते हैं। संस्कृत नाटक में रस को इसीलिए वस्तु और नेता से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। रस की प्रक्रिया में रचनाकार द्वारा अनुभव किए गए सत्य को नाट्य रचना द्वारा पाठक या दर्शक तक संप्रेषित किया जाता है। लेखक की अनुभूति से पाठक की अनुभूति के तदाकार होने की इस प्रक्रिया को रसानुभूति कहा जाता है।

पश्चिम के नाट्य सिद्धांतों में करुणा और त्रास के माध्यम से विरेचन या भाव-परिष्कार करना त्रासदी का उद्देश्य माना गया था। ये दोनों दृष्टियाँ वस्तुतः नाटक के उद्देश्य को केंद्र में रखकर चलती हैं।

आधुनिक नाटककारों ने सिद्धांतों के जटिल बंधन को अस्वीकार कर दिया है किंतु किसी भी नाटक में जो अनुभूति अथवा जीवन सत्य प्रतिपादित किया गया है वह समाज के लिए किस दृष्टि से प्रासंगिक और उपयोगी है ? इस प्रश्न का उत्तर ही उस नाटक के महत्व को निर्धारित करता है। उसमें प्रस्तुत भाव बोध, मन स्थितियाँ परिस्थितियाँ और वास्तविकताएँ जीवन के किन्हीं महत्वपूर्ण प्रश्नों या समस्याओं को जिस हद तक उजागर करती हैं, उन पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं या मानव मूल्यों को उद्घाटित और स्थापित करती हैं उस हद तक ही वह नाटक समाज के लिए सार्थक और प्रासंगिक होगा।

नाटक के विभिन्न पात्र अपनी-अपनी स्थितियों में जो कुछ कहते और करते हैं उसके भीतर निहित आशय को पकड़ने पर ही इस लेखकीय दृष्टि का पता लगा सकते हैं। कभी-कभी तो लेखक स्वयं समाधान प्रस्तुत करके अपने उद्देश्य के सीधे स्पष्ट कर देता है किंतु कभी-कभी वह केवल समस्या को उभार कर छोड़ देता है। दर्शक के मन में उस समस्या के प्रति बेचैनी या आकुलता मात्र उत्पन्न कर देता है और दर्शक से अपेक्षा करता है कि जीवन में उठने वाले प्रश्नों या समस्याओं का समाधान वह स्वयं ढूँढ़े। मराठी के प्रसिद्ध नाटककार विजय तेंदुलकर के नाटक इसी प्रकार के हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में प्रतिपाद्य और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। इतिहास की घटना की पुनरावृत्ति मात्र लेखक का उद्देश्य नहीं होता। उसके माध्यम से लेखक वर्तमान के किसी प्रसंग, समस्या या परिस्थिति को उजागर करता है।

किसी नाटक में प्रतिपाद्य को समझने और उसका मूल्यांकन करने के लिए नाटक को ध्यान से पढ़ना या मंच पर उसकी प्रस्तुति देखना आवश्यक है।

#### बोध प्रश्न 4

क) निम्नलिखित के बारे में अधिक से अधिक आठ-दस शब्दों में बताइए।

- i) नायक
- ii) नायिका
- iii) खलनायक
- iv) विदूषक

.....

.....

.....

.....

.....

ख) परिवेश की सृष्टि किस-किस माध्यम से की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) नाटक की भाषा अन्य साहित्य माध्यमों की भाषा से किस प्रकार विशिष्ट होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

घ) निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं? लगभग तीन पंक्तियों में उत्तर दजिए।

- i) पात्र और परिस्थिति के अनुकूल संवाद
- ii) स्वगत कथन

.....

.....

.....

.....

.....

ङ) अभिनय के चार प्रकार कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 1.6 नाटक के प्रकार

---

आपने कुछ नाटक अवश्य देखे होंगे। यह महसूस किया होगा कि नाटक कई तरह के होते हैं। कुछ नाटकों को आप किसी थिएटर अथवा रंगमंच पर प्रस्तुत होते देखते हैं। साथ ही कुछ नाटक आपने ऐसे भी देखे होंगे जिनके अभिनय के लिए किसी थिएटर या रंगशाला की जरूरत नहीं है। आपने रामलीला या रासलीला देखी होगी, नौटंकी, विदेसिया या तमाशा आदि देखे होंगे या नुक्कड़ नाटक देखे होंगे। इनकी प्रस्तुति किसी भी खुली जगह में हो जाती है। जरूरत हो तो कुछ तख्त आदि डाल कर मंच बना लिया जाता है नहीं तो लोग दायरा बना कर खड़े हो जाते हैं या बैठ जाते हैं और अभिनेता बीच में खड़े होकर अभिनय करते हैं। इसके अलावा आपने टेलीविजन पर नाटक देखे होंगे या रेडियो पर नाटक सुने होंगे। इस तरह के नाटकों के कई भेद

होते हैं जैसे साहित्यिक नाटक और लोक नाटक। कृति के रूप में प्रस्तुत नाट्य रचनाएँ पहली श्रेणी में आती हैं और जन जीवन में अभिनय की परंपरा के रूप में व्याप्त नाटक जैसे – रामलीला, रासलीला आदि दूसरी श्रेणी में। साहित्यिक नाटक कई प्रकार के होते हैं। वस्तुतः इनके भेदों का निर्धारण कई आधारों पर किया जा सकता है। जैसे—

- 1) स्वरूप के आधार पर – सुखांत नाटक, दुखांत नाटक, दुःख-सुखांत नाटक, प्रहसनपरक नाटक
- 2) विषय के आधार पर – ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, सामाजिक नाटक, राजनीतिक नाटक, धार्मिक नाटक
- 3) शैली के आधार पर – हास्यपरक नाटक, व्यंग्यपरक नाटक, प्रतीकात्मक नाटक, मनोविश्लेषणपरक नाटक
- 4) अंकों के आधार पर – एकांकी नाटक, अनेकांकी नाटक (जिसे वस्तुतः “नाटक” ही कहा जाता है)
- 5) पात्रों के आधार पर एक पात्रीय नाटक, बहु पात्रीय नाटक
- 6) गद्य-पद्य के आधार पर – गद्य नाटक, पद्य नाटक, गीति नाटक
- 7) प्रयोगों के आधार पर – समस्या नाटक, नुक्कड़ नाटक, एब्सर्ड नाटक
- 8) प्रस्तुति माध्यम के आधार पर – रंगमंचीय नाटक, रेडियो नाटक, टेलीविजन नाटक

नाटकों के ये प्रकार उनकी विशिष्टताओं को स्पष्ट करने के लिए निर्धारित किए गए हैं। अतः यह नहीं समझना चाहिए कि कोई नाटक उपर्युक्त में से किसी एक ही प्रकार का हो सकता है। किसी भी नाटक में विभिन्न दृष्टियों से कई तरह की विशिष्टताएँ होती हैं, जैसे कोई नाटक राजनीतिक होने के साथ-साथ प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक भी हो सकता है। उसे समस्या नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है और नुक्कड़ के रूप में भी।

## 1.7 हिंदी नाटक का विकास

हिन्दी साहित्य का इतिहास यद्यपि एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है किंतु अठारहवीं शताब्दी तक यहाँ काव्य रचना की ही प्रधानता रही। ब्रजभाषा में लिखित थोड़े बहुत पद्य नाटक मिलते हैं किंतु रंगमंच की दृष्टि से इन्हें नाममात्र का ही नाटक कहा जा सकता है। कहा जा सकता है कि हिंदी में विधिवत् नाट्य लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू हुआ। हिंदी नाटक के विकास को हम निम्नलिखित ढंग से कालक्रमानुसार विभाजित कर सकते हैं :

- i) भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक
- ii) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
- iii) प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

### 1.7.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक

हिंदी नाटक की सशक्त परंपरा भारतेन्दु युग में शुरू हुई। इस काल के सभी प्रतिभा संपन्न रचनाकारों ने गद्य की विविध विधाओं में योगदान दिया किंतु केंद्रीय विधा नाटक ही रही। संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी नाटकों से प्रभाव ग्रहण करते हुए नाटक का नया ढाँचा निर्मित हुआ। मौलिक नाट्य लेखन के साथ साथ संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला से प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुआ। भारतेन्दु न केवल आधुनिक हिंदी नाटक के जनक हैं बल्कि हिंदी नाट्य परंपरा में जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को प्रतिष्ठित करने

वाले अग्रदूत भी हैं। भारतेन्दु से पहले महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन' और गोपाल का 'नहुष' नाटक मिलते हैं किन्तु ये दोनों ही बजभाषा में लिखित हैं और नाट्यकला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। भारतेन्दु ने अपनी नवजागरणपरक चेतना तथा दृष्टि की आधुनिकता से नाट्यकला को जनप्रियता तथा कलात्मकता प्रदान की। उन्होंने मौलिक तथा अनूदित दोनों ही तरह के नाटक हिंदी को दिये। उनके 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'सती प्रताप', 'अंधेर नगरी' तथा संस्कृत से अनुवादों में 'रत्नावली', 'पाखंड विडंबन', 'मुद्राक्षस', 'धनंजय विजय', 'कर्पूर मंजरी', बंगला अनुवादों में 'भारत जननी', 'विद्या सुंदर', 'सत्य हरिश्चंद्र' उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी से अनुवादों में 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नाटक के माध्यम से भारतेन्दु ने अपने समय की समस्याओं को जन सामान्य के सामने रखा। समाज में व्याप्त बुराईयाँ, अधिकारी वर्ग के भ्रष्टाचार और शासकीय अत्याचार पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में नाटक और रंगमंच की भूमिका का बड़ा ही सार्थक उपयोग किया। वे रंगमंच की प्रभाव शक्ति को पहचानते थे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज की अनेक समस्याओं को जाँचा-परखा तथा जन सामान्य को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया।

भारतेन्दु के नाटकों की प्रमुख विशेषता है **प्राचीन और नवीन का समन्वय**। उनके नाटक संस्कृत नाट्य शैली से काफी प्रभावित हैं किन्तु पश्चिमी नाट्य शैली को भी उन्होंने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। आवश्यकतानुसार दोनों को अपनाया है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और शृंगारपरक नाटकों की रचना की है। वस्तु विन्यास में वे अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों के बंधन में बँधकर नहीं चले हैं। पात्रों की सृष्टि में उन्होंने भारतीय आदर्शवाद और पश्चिमी यथार्थवाद दोनों का आश्रय लिया है। पात्र चरित्र विकास में उतार-चढ़ाव नहीं है। फिर भी किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र अपने आप में बड़े यथार्थ और जीवंत हैं। जैसे, उनके ब्राह्मण पात्र समाज को रूढ़ियों में जकड़ते हैं और अपने पेट का पालन ही सर्वोपरि समझते हैं। ऐसे पात्रों के द्वारा लेखक ने व्यंग्य की सृष्टि की है। 'अंधेर नगरी' का जात बेचने वाला ब्राह्मण इसका उदाहरण है। भारतेन्दु का महत्व इस बात में है कि उन्होंने विभिन्न वर्गों, व्यवसायों और जातियों के लोगों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ पहली बार रंगमंच पर एक साथ प्रस्तुत किया है। उनके संवाद गद्य-पद्य दोनों में हैं। भाषा प्रयोग पात्रानुसार है। कविताओं और गीतों का खूब प्रयोग किया गया है।

भारतेन्दु के लेखन ने उनके समसामयिक रचनाकारों को प्रभावित किया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, शीतला प्रसाद त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भारतेन्दु का अनुसरण किया और नाटक लेखन तथा प्रस्तुतिकरण की धूम सी मच गई। भारतेन्दु ने नाटक लेखन के अलावा नाट्य सिद्धांतों पर भी विचार किया तथा नाट्य मंडली की स्थापना की। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र और प्रेमघन भी अभिनय की व्यवस्था तो करते ही थे स्वयं अभिनय भी करते थे। इस तरह वे तत्कालीन पारसी रंगमंच की कुरीतियों के विरोध में जनरुचि का परिष्कार करने में भरसक संलग्न थे।

### भारतेन्दु युगीन नाटककार

भारतेन्दु ने नाटक के क्षेत्र में जो पथ प्रदर्शन किया उसका सिलसिला जारी रहा। नाट्य दिशाएँ वे ही रहीं जिनकी शुरुआत भारतेन्दु ने की थी और इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय चेतनापरक और व्यंग्यात्मक नाटकों के अलावा प्रेम प्रधान नाटक भी लिखे गये। इस युग के नाटकों का मूलस्वर नीतिपरक रहा। आगे हम इस युग के प्रमुख नाटककारों और उनके नाटकों के बारे में पढ़ेंगे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक तथा प्रहसन लिखे तथा बंगला के दो नाटकों का अनुवाद किया। इनके प्रमुख नाटक हैं — ‘दमयंती स्वयंवर’, ‘वेणी संहार’, किरातार्जुनीय ‘वृहन्नला’, ‘जैसा काम वैसा परिणाम’, ‘नई रोशनी का विष’ आदि। अपने नाटकों में भट्टजी ने प्रधानतया संस्कृत नाट्य प्रणाली को अपनाया है। उनके ‘प्रहसन’ तीखे हैं और सामाजिक कुरीतियों तथा पाखंड पर व्यंग्य करते हैं।

राधाकृष्णदास ने ‘महाराणा प्रतापसिंह’, ‘महारानी पद्मावती’ तथा ‘दुःखिनी बाला रूपक’ नामक नाटकों की रचना की। इनमें पहले दो ऐतिहासिक हैं। तीसरा नाटक दुखांत है। इसमें सामाजिक व्यंग्य को उभारा गया है।

पंडित प्रताप नारायण मिश्र लेखन में भारतेन्दु को अपना आदर्श मानते थे और अपनी विनोदप्रियता तथा व्यंग्य वक्रता के लिए प्रसिद्ध थे। ‘हमीर हठ’, ‘गौ संकट नाटक’, ‘कलि कौतुक रूपक’, ‘जुआरी खुआरी प्रहसन’ आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। लाला श्री निवासदास ने ‘रणधीर और प्रेम मोहिनी’ नामक दुखांत नाटक की रचना की। यह उस समय काफी लोकप्रिय हुआ और कई बार मंच पर प्रस्तुत किया गया। इसके उर्दू और गुजराती अनुवाद भी हुए। उन्होंने ‘संयोगिता स्वयंवर’ तथा ‘प्रहलाद चरित्र’ नामक पौराणिक नाटक भी लिखे।

काशीनाथ खत्री ने एक अंक के लघु रूपकों की रचना की। इनमें ‘ग्राम पाठशाला’, ‘निकृष्ट नौकरी’, ‘सिंधु देश की राजकुमारियाँ’, ‘गुन्नौ की रानी’ प्रमुख हैं। खत्री जी स्वभाव से सुधारवादी थे। इसलिए उनकी रचनाओं में सुधार की प्रेरणा ही प्रमुख है। इनका ‘बाल विधवा संताप’ नाटक ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रेरणा से लिखा गया था।

राधाचरण गोखामी ने ‘अमरसिंह राठौर’, ‘श्रीदामा’, ‘तन मन धन गोसाईं के अर्पण’ और ‘बूढ़े मुँह मुहासे’ नाटकों की रचना की। देवकीनंदन खत्री ने ‘सीताहरण’, ‘रुक्मिणी हरण’, ‘कंस वध’, ‘बाल विवाह’, ‘स्त्री चरित्र’ ‘सैंकड़ों के दस-दस’ आदि नाटक लिखे। यहाँ हमने इस युग के कुछ प्रमुख नाटककारों के कुछ तत्वों का उल्लेख किया है। इनके अलावा भी नाटक लिखे गये। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु युग के सभी लेखकों ने नाटक लिखे। विषय तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से इन नाटकों का उद्देश्य समाज का सुधार और परिष्कार तथा आदर्श की स्थापना था। पौराणिक विषयों तथा श्री राम और कृष्ण की लीलाओं पर लिखे नाटकों का उद्देश्य विस्मृत संस्कृति का स्मरण कराना था। ऐतिहासिक नाटकों का प्रमुख उद्देश्य भारतीय महापुरुषों के विस्मृतप्राय गौरव की याद दिलाकर जन जीवन में आत्म-गौरव की भावना जगाना था। सामाजिक व्यंग्यात्मक नाटकों द्वारा कुरीतियों, पाखंड और भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि अनेक नाटकों में बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह या स्त्रियों की दीन दशा, पर्दा प्रथा आदि के प्रश्न को उठाया गया है। देश-दुर्दशा संबंधी नाटकों द्वारा देश के प्रति कर्तव्य और राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का प्रयास किया गया है। रोमानी प्रेम संबंधी नाटक उपदेश प्रधान होते हुए भी रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्ति का ही विस्तार हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि इन नाटकों के सृजन के पीछे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योग था।

### नाटकों के अनुवाद

मौलिक नाटक लेखन के साथ-साथ संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद की जो परंपरा भारतेन्दु ने शुरू की थी वह उनके बाद भी लंबे समय तक चलती रही। संस्कृत से ‘रत्नावली’, ‘प्रबोध चंद्रोदय’, ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’, ‘मालविकाग्निमित्र’, ‘मृच्छकटिकम्’, ‘उत्तर रामचरित’, ‘मुद्राराक्षस’, ‘कपूर मंजरी’ — आदि के अनुवाद हुए।

बंगला से माइकेल मधुसूदन दत्त के 'शर्मिष्ठा' और 'पद्मावती' का अनुवाद बालकृष्ण भट्ट ने किया। 'ई की सभ्यता बोले' का अनुवाद 'क्या इसी को सभ्यता कहते हैं' के नाम से ब्रजनाथ ने किया। लक्ष्मीनारायण चक्रवर्ती के नाटक 'नवाब सिराजुद्दौला' का अनुवाद शिवनंदन त्रिपाठी ने किया। ब्रह्मनंदन सहाय ने 'सप्तम प्रतिभा' और 'बूढ़ा वर' का अनुवाद किया। जोसोफ एडीसन के 'केटो' नाटक का अनुवाद तोताराम ने 'केटो वृतांत' नाम से किया।

अंग्रेजी से शेक्सपियर के 'किंगलियर', 'ओथेलो', 'मर्चेस ऑफ वेनिस', 'एज यू लाइक इट', 'रोमियो एंड ज्यूलियट' के अनुवाद किए गए। जोसोफ एडीसन के 'केटो' नाटक का अनुवाद तोताराम ने 'केटो वृतांत' नाम से किया।

प्रचुर मात्रा में अनुवादों ने हिंदी नाटक को विषय और शिल्प की विविधता से संपन्न किया। साथ ही बाद के हिंदी नाटककारों पर इन अनुवादों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा है।

### 1.7.2 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि भारतेन्दु के बाद काफी समय तक हिंदी नाटक की दिशा वही रही जो भारतेन्दु ने निर्धारित कर दी थी। द्विवेदी युग में नाट्य कर्म की गति बहुत मंद रही। जयशंकर प्रसाद के आविर्भाव के साथ हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नए युग की शुरुआत होती है। भारतेन्दु के नाटकों में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक नवजागरण की चेतना की जो झलक दिखाई देती है उसका समग्र, प्रखर और उत्कृष्ट रूप 'प्रसाद' के नाटकों में मिलता है। इतिहास, संस्कृति और दर्शन के गहन अध्ययन और विश्लेषण को आधार बनाते हुए, 'प्रसाद' ने उन्हें अपने साहित्य में नई अर्थवत्ता प्रदान की। इतिहास का 'प्रसाद' ने बृहत्तर उपयोग किया। अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका में उन्होंने लिखा है "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संघटित करने में अत्यंत लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।"

इस कथन को 'प्रसाद' की मनोभूमिका की संकल्पबद्ध घोषणा कहा जा सकता है। उनका नाट्य सृजन सन् 1910-11 में शुरू हो गया था। 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'राज्यश्री' आदि वस्तुतः उनके प्रयोग काल की रचनाएँ हैं। सन् 1921 में 'विशाख' के प्रकाशन से हिंदी नाटक के क्षेत्र में नई उद्भावनाओं की शुरुआत होती है। इसके बाद सन् 1933 तक का समय 'प्रसाद' के नाट्य लेखन का उत्कर्ष काल है। इसमें 'अजात शत्रु' (1922), "जनमेजय का नागयज्ञ" (1923), 'कामना' (1923-24), 'स्कन्दगुप्त' (1928), 'एक घूँट' (1929), 'चंद्रगुप्त' (1931), 'ध्रुवस्वामिनी' (1933) की रचना हुई।

'प्रसाद' जी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के नाटककार हैं। कथ्य, शिल्प, संवेदना और भाषा सभी क्षेत्रों में रुढ़ियों के प्रति विद्रोह उनके नाटकों का प्रधान स्वर है। पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों का समन्वय करते हुए उन्होंने अपने लिए एक नयी नाट्य दृष्टि की तलाश की। अपने समय की हर धड़कन को पहचानते हुए उन्होंने सभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण सुधार आंदोलनों को अपने नाटकों में वाणी दी। देशभक्ति, राष्ट्र की भावना, साम्राज्यवादी शोषण का विरोध, समता की भावना, तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना उनके नाटकों का प्रबल स्वर है। उनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। इनसे पहले के नाटकों में पात्रों का व्यक्तित्व नाटककार के व्यक्तित्व से स्वतंत्र नहीं हो पाया था। किंतु 'प्रसाद' के पात्रों का निजी व्यक्तित्व होते हुए भी विश्वसनीय है, क्योंकि उसे मनोवैज्ञानिक आधार मिला है।

भाषा और संवादों की दृष्टि से 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग किए हैं। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक देशकाल से संबद्ध होने के कारण उनकी नाट्य भाषा प्रसंगानुकूल संस्कृतनिष्ठ है और कठिन होते हुए भी पात्रानुकूल। सभी पात्र गहन-गंभीर, बिंब प्रधान पात्रों की स्थिति और प्रतीकात्मक भाषा नहीं बोलते। पात्रों की स्थिति, मनोभूमिका और प्रसंग के अनुसार शैली कहीं भावप्रधान, कहीं व्याख्यापरक, कहीं विश्लेषणपरक और कहीं 'वार्तालाप' की रवानी लिए हुए है। संवादों पर प्रसाद के कवि-कथाकार व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनमें एक खास तरह का तार्किक पैनापन और साहित्यिक सुरुचिपूर्णता है।

अभिनेयता की दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटक विवाद का विषय रहे हैं। उनकी भाषा, दृश्य विधान और रंगमंचीय परिकल्पना पर काफी प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। आरंभ में दो-चार बार प्रस्तुति के बाद लंबे समय तक इन नाटकों को प्रस्तुत नहीं किया गया क्योंकि हिंदी के पास अपना कोई रंगमंच नहीं था। किंतु आज यह स्थिति नहीं है। छठे दशक से हिंदी में रंग कर्म की पुनः शुरुआत हुई और आज नए रंगकर्मी यह मानने लगे हैं कि 'प्रसाद' के नाटकों में व्यापक रंग मंचीय संभावनाएँ हैं जिनकी तलाश के लिए निर्देशकों और अभिनेताओं की लगन और परिश्रम की आवश्यकता है। हिन्दी के प्रमुख निर्देशकों ने उनके कई नाटकों की प्रस्तुतियाँ की हैं।

### प्रसाद युगीन अन्य नाटककार

'प्रसाद' जी के समसामयिक हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में सांस्कृतिक अखंडता को नये ढंग से पर मध्यकालीन इतिहास से अपनी कथावस्तु चुनते हुए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को केंद्र में रखा है। 'रक्षाबंधन' 'स्वप्न भंग', 'आहुति'. जैसे नाटकों की संवाद योजना तथा चरित्र योजना में राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रधान है। भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है।

### गीति नाट्य

गद्य नाटकों के अलावा 'प्रसाद' जी ने 'करुणालय' की रचना करके हिंदी गीति नाट्य परंपरा की भी शुरुआत की थी। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' तथा उदय शंकर भट्ट ने 'विश्वामित्र', 'राधा', 'मत्स्यगंधा' आदि की तथा सियारामशरण गुप्त ने युद्ध की समस्या को लेकर 'उन्मुक्त' नामक श्रेष्ठ गीति नाट्य की रचना की।

### समस्या नाटक

'प्रसाद' के समकालीन लेखकों में नए गद्य प्रयोग करने वालों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम प्रमुख है 'प्रसाद' की इतिहास दृष्टि और स्वच्छंदतावादी दृष्टि के विरुद्ध बगावत के स्वर में मिश्र जी ने यथार्थवादी बुद्धिवादी नाटकों पर जोर दिया और अंग्रेजी के 'Problem Play' के अनुकरण पर उन्होंने हिंदी में समस्या नाटकों की रचना की। उनके प्रमुख नाटक हैं, 'राक्षस का मंदिर', 'सिंदूर की होली', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' आदि। समसामयिक समाज की किसी ज्वलंत समस्या को प्रस्तुत करने वाले इन नाटकों में भावुकतापरक रोमानी दृष्टि से बचने का भरपूर प्रयास है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारों में सुदर्शन, सेठ गोविंददास, बद्रीनाथ मिश्र, बलदेव प्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है। रंगमंच तथा साहित्यिक महत्व के अभाव में इन नाटकों का ऐतिहासिक महत्व है।

### अनुवाद

अनुवाद की भी इस युग में महत्वपूर्ण परंपरा बनी रही। संस्कृत नाटकों के अनुवादों के साथ-साथ एक ओर मालियर गाल्सवर्दी मेत्रलिक आदि के नाटकों के अनुवादों से

हिंदी नाट्य साहित्य समृद्ध हुआ और दूसरी ओर बंगला से जिला राय के नाटकों के अनुवादों की धूम रही। अनुवादकों में श्री सीताराम का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी नाटक : स्वरूप  
और विकास

### बोध प्रश्न-5

क) भारतेन्दु को आधुनिक हिंदी नाटक का जनक क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) भारतेन्दु तथा उनके युग के नाटककारों ने हिंदी नाटक को किस-किस दृष्टि से समृद्ध किया?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति सही शब्द चुन कर कीजिए।

- i) 'प्रसाद' जी ..... दृष्टि के नाटककार हैं।  
(स्वच्छंदतावादी / यथार्थवादी)
- ii) उन्होंने ..... को अपने नाटकों का आधार बनाया।  
(इतिहास / धर्म)
- iii) भाषा और संवादों की दृष्टि से उन्होंने ..... किया।  
(परंपरा का पालन / नया प्रयोग)
- iv) उनके नाटकों की अभिनेयता ..... रही है।  
(निर्विवाद / विवाद का विषय)

### 1.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि प्रसाद जी ने जिस स्वच्छंदतावादी नाट्य परंपरा की शुरुआत की थी उसके विरुद्ध लक्ष्मीनारायण मिश्र ने बुद्धिवाद का नारा बुलंद किया। किंतु मिश्र जी अपने प्रयोग में बहुत सफल न हो सके और स्वयं पौराणिक नाटकों की ओर लौट पड़े।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है एकांकी लेखन की शुरुआत। एकांकीकारों में डा. रामकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ अशक, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एकांकीकारों के बारे में विस्तृत जानकारी आप इस पाठ्यक्रम की इकाई संख्या 11 से प्राप्त कर सकते हैं।

हिंदी नाटक में अपेक्षाकृत सार्थक दौर चौथे दशक के अंतिम चरण में शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप जो सामाजिक, राजनीतिक, विचारपरक जागरूकता उत्पन्न हुई उससे देश के बौद्धिक मानसिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ। जीवन

और साहित्य के रिश्ते को नये ढंग से देखा-परखा गया, साथ ही नाटक और रंगमंच के संबंध को गहराई से महसूस किया गया। नाटक के विषय में इस बदलती हुई चेतना को अभिव्यक्ति उपेन्द्रनाथ अशक के नाटकों में मिलती है। 'अंजोदीदी', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैद', 'उड़ान', 'अलग-अलग रास्ते' आदि में मध्य वर्ग की साधारण रोजमर्रा की जिंदगी की समस्याओं और चिन्ताओं को हास्य व्यंग्य के पैसेपन के साथ उभारा गया है। परिस्थिति की सूक्ष्म एका बोलचाल की जीवंत भाषा, रंगमंच पर सहज अभिनेयता आदि इनके नाटकों की विशेषताएँ हैं।

नाटक को रंगमंच से जोड़ने के अशक जी के प्रयास को जगदीशचंद्र माथुर ने आगे बढ़ाया। उनका नाटक 'कोणार्क' हिंदी नाट्य साहित्य के विकास की एक महत्वपूर्ण मंजिल है। प्राचीन युग के माध्यम से समसामयिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए यहाँ लेखक ने घटनाओं, पात्रों और भाषा के अर्थ के लिए विविध स्तर और आयाम प्रदान किये हैं। उनके अगले नाटक "शारदीया" और "पहला राजा" भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर ही लिखे गये हैं।

इसी समय धर्मवीर भारती का काव्य नाटक 'अंधा युग' (1955) आया। कविता और नाटक के बीच गहरे रिश्ते को इसने पहली बार रंगमंच पर सिद्ध किया। 'अंधा युग' के अनेक सफल प्रदर्शन हुए। इसी से प्रेरित होकर दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' नामक काव्य नाटक लिखा। सुमित्रानंदन पंत ने भी कई काव्य नाटक लिखे जिसमें 'शिल्पी' अधिक प्रसिद्ध हुआ।

नाटक और रंगमंच के रिश्ते को पहचानते हुए सार्थक नाट्य सृजन करने वालों में प्रमुख नाम है, मोहन राकेश का। इतिहास, कविता और नाटक के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए गहन मानवीय भावों की सार्थक अभिव्यक्ति की जो परंपरा जयशंकर प्रसाद ने शुरू की थी तथा स्वाभाविकता और नाटकीयता, यथार्थपरकता और काव्यात्मकता का जो मिश्रण जगदीशचंद्र माथुर ने किया था उसका अगला चरण मोहन राकेश के नाटकों में मिलता है। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों का राजहंस' तथा 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक और रंगमंच को विस्तृत आयाम दिया। जीवन की गहन मार्मिक अनुभूतियों के तीखे बोध को अतीत और वर्तमान में एक साथ तलाश करने का सार्थक प्रयास हिंदी नाटक में पहली बार इतनी सफलतापूर्वक किया गया। समसामयिक जीवन स्थितियों की कशमकश को व्यक्त करने वाले उनके नाटक 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक को नया मुहावरा देते हुए हिंदी रंगमंच को नया दर्शक वर्ग प्रदान किया।

इसी समय लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य लेखन और नाट्य-संचालन (प्रदर्शन और प्रशिक्षण) के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका आरंभ की। भारतेन्दु के बाद एक बार फिर नाटक और रंग कर्म एक दूसरे से व्यावहारिक रूप में जुड़े। उनके नाटकों में 'अंधा कुआँ', 'तीन आँखों वाली मछली', 'मादा कैक्टस', 'तोता मैना', 'रातरानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'दर्पण' आदि प्रमुख हैं।

रंगमंच के इस नए आंदोलन ने विष्णु प्रभाकर को भी प्रभावित किया। मौलिक नाटक लेखन के अलावा उन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण उपन्यासों और कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किए। इनमें प्रेमचंद के 'ग़बन' और 'गोदान' के नाट्य रूपांतर 'चंद्रहार' और 'होरी' तथा प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की बंगला कहानी 'देवी' का नाट्य रूपांतर 'देवी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण नाटक लेखकों और उनकी प्रमुख कृतियों में विनोद रस्तोगी के 'नए हाथ', नरेश मेहता के 'सुबह के घंटे' और 'खंडित यात्राएं' लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिवप्रसाद सिंह के 'घाटियाँ गूँजती हैं' मन्नू भंडारी के 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' मुद्राराक्षस का 'तिलचट्टा'

शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी के 'हानुश' तथा 'कबिरा खड़ा बाजार में', सुरेंद्र वर्मा के 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', मणि मधुकर के 'रस गंधर्व' रेवतीशरण शर्मा का 'चिराग की लौ' ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'नेफा की एक शाम', प्रभात कुमार भट्टाचार्य के 'काठ महल', सुशील कुमार सिंह के 'सिंहासन खाली है', आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

### अनुवाद

आज हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा संगीत नाटक अकादमियों तथा विविध अव्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत होने वाले नाटकों में बड़ी संख्या अनूदित नाटकों की होती है। बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के नाटक बड़ी संख्या में अनूदित होकर हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होते हैं। भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी से भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद होते रहते हैं। इस तरह हिंदी दर्शक को रवीन्द्रनाथ, शंभु मित्र, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, मॉलियर, टॉलस्टाय, ओ नील, इब्सन, चेखव, आयनेस्को, शेक्सपियर आदि रचनाकारों की कृतियाँ निरंतर उपलब्ध होती रहती हैं।

सन् 1960 के बाद नाटक और रंगमंच के इतिहास में नई उपलब्धियों का दौर शुरू हुआ। जीवन की गहन और बुनियादी समस्याओं को गहरे और व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने के अलावा स्त्री-पुरुष संबंधों का सूक्ष्म विश्लेषण-विवेचन और उनकी जाँच-पड़ताल की गई। नाटक को रंगमंच से ज्यादा से ज्यादा जोड़ने और नए-नए रंग प्रयोग करने के प्रयास किए गए हैं। कलकत्ता, मुंबई, दिल्ली, चेन्नई जैसे महानगरों में शुरू रंग आंदोलनों का विस्तार छोटे शहरों और कस्बों तक हुआ है। इब्राहीम अल्काजी, सत्यदेव दुबे, श्यामानंद जालान, प्रतिभा अग्रवाल, हबीब तनवीर, शीला भाटिया, ब.व. कारंत, ओम शिवपुरी, दीनानाथ, सई परांजपे, राम गोपाल बजाज, लक्ष्मीनारायण लाल, अमाल अल्लाना, बी.एम. शाह, बलराज पंडित आदि नाट्य निर्देशकों ने सफल प्रस्तुतियाँ की हैं। नाटक की परंपरागत शास्त्रीय पद्धतियों के साथ-साथ लोक नाट्य शैलियों में प्रस्तुति भी इन दिनों काफी लोकप्रिय हुई है। इन क्षेत्रों में पहल हबीब तनवीर ने की। उसके बाद छत्तीसगढ़ी नाचा शैली, राजस्थानी ख्याल शैली, कर्नाटक की यक्षगान शैली, उत्तर प्रदेश की नौटंकी शैली आदि में बहुत ही सफल प्रस्तुतियाँ हुई हैं।

हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत अनूदित नाटकों में गिरीश कर्नाड का 'तुगलक' और 'हयवदन', आद्य रंगाचार्य का 'सुनो जनमेजय', विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है', 'घासी राम कोतवाल', 'सखाराम बाइंडर', बादल सरकार का 'जुलूस', ब्रेक्त् का 'खड़िया का घेरा', टॉलस्टाय का 'पाप और प्रकाश', मालियर का 'कंजूस' और 'बीबियों का मदरसा', शेक्सपियर का 'वरनम वन' आदि विशेष रूप से चर्चित रहे हैं।

आज हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटकों में अनूदित नाटकों की संख्या मौलिक नाटकों के लगभग बराबर ही होती है। विविध भाषाओं के संस्कारों के इस सम्मिश्रण से हिंदी रंगमंच तथा नाटक के लिए नई दिशाओं की संभावनाएँ खुल रही हैं।

रंगशालाओं में नाट्य प्रस्तुति के अलावा अन्य प्रस्तुति माध्यम भी आज हिंदी में बहुत तेजी से सक्रिय तथा काफी हद तक लोकप्रिय हैं। इनमें नुक्कड़ नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी समस्याओं को उठा कर जनचेतना जगाने वाले ये नाटक सभी तरह की साहित्यिक और रंगमंचीय रुढ़ियों से मुक्त हैं। गली, मोहल्ले या पार्क के किसी कोने में अनौपचारिक रूप में अभिनीत होने वाले इन नाटकों में लोक नाटकों की भाँति जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

आज नाटक का अत्यधिक लोकप्रिय रूप टेलीविजन-सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटकों के रूप में मिलता है। केवल ध्वनि प्रभावों पर आधारित होने के कारण रेडियो नाटक भी आज दूरदर्शन सीरियलों से पीछे रह गए हैं। तकनीकी साधनों के प्रयोग ने यहाँ रंग प्रस्तुति की सभी सीमाओं को दूर कर दिया है। साथ ही इसके माध्यम से नाटक बहुत व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचा है। अब तक दर्शक को नाटक देखने जाना पड़ता था किंतु दूरदर्शन ने नाटक को दर्शक के घर तक पहुँचा दिया है। फर्क इतना है कि इस माध्यम में दर्शक और अभिनेता का जीवंत संपर्क समाप्त हो गया है। इस दृष्टि से नाटक सिनेमा के अधिक करीब हो गया है।

#### बोध प्रश्न-6

क) प्रसादोत्तर हिंदी रंगमंच की पाँच प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित नाटकों के लेखकों के नाम बताइए :

- i) अंजोदीदी
- ii) कोणार्क
- iii) आषाढ़ का एक दिन
- iv) मादा कैक्टस
- v) हानुश

ग) निम्नलिखित व्यक्ति किस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं ?

- i) रामकुमार वर्मा
- ii) अब्राहिम अल्काजी
- iii) ब. व. कारंत
- iv) मोहन राकेश

घ) i) तीन लोक नाट्य शैलियों के नाम बताइए तथा यह भी बताइए कि वे किस प्रदेश से संबंधित हैं।

.....

.....

ii) भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित तीन नाटकों के नाम बताइए जो रंगमंच पर काफी लोकप्रिय हुए हों।

.....

.....

ङ) नुक्कड़ नाटक के बारे में चार पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

## 1.8 सारांश

इस इकाई में आपने नाट्य विधा की विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त की। अब आप जान गए हैं कि नाटक को आमने-सामने देखा जा सकता है। इस कारण इसका असर बहुत तेज होता है। इसमें बहुत से रंगकर्मियों का सहयोगी प्रयास अपेक्षित होता है तथा दर्शक भी इसे सामूहिक रूप से देखते हैं। इस तरह यह साहित्य की अन्य विधाओं से विशिष्ट है। रंगमंच और नाटक के अन्योन्याश्रित संबंध के बारे में भी आप जान गये हैं। नाटक के विभिन्न तत्वों के बारे में आपने पढ़ा है और अब आप समझ गये हैं कि प्राचीन भारतीय और पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों से प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद हिंदी नाटक का अपना स्वरूप है। इसके तत्वों—कथानक, पात्र, परिवेश, भाषा—शैली, संवाद, मंत्रीयता और प्रतिपाद्य के बारे में भी आप जानते हैं। हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों से भी आपका परिचय हो गया है। अब आप बता सकते हैं कि कैसे भारतेन्दु ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नई शुरुआत की तथा अपने समय के लगभग सभी लेखकों को नाट्य रचना की ओर आकृष्ट किया। उसके बाद कैसे 'जयशंकर प्रसाद' ने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। आजादी के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में हुए विभिन्न परिवर्तनों की चर्चा भी आप कर सकते हैं।

## 1.9 शब्दावली

|                       |                                                                                                                                                                                                                                                               |
|-----------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| अनायास                | : बिना कोई प्रयास किए।                                                                                                                                                                                                                                        |
| आदि काव्य             | : महर्षि वाल्मीकि रचित "रामायण"।                                                                                                                                                                                                                              |
| सघनता                 | : गहनता और घनापन, प्रभाव का पूर्णतया व्यापक होना।                                                                                                                                                                                                             |
| लोक सिद्ध             | : समाज द्वारा स्वीकृत।                                                                                                                                                                                                                                        |
| तादात्म्य             | : अभिन्नता, परस्पर एक होने का भाव, साहित्य में रचनाकार या रचना को प्रस्तुत करने वाले के या दर्शक के भावों की अभिन्नता।                                                                                                                                        |
| स्थापत्य कला          | : वास्तुकला, भवन निर्माण कला।                                                                                                                                                                                                                                 |
| विरेचन (भाव परिष्कार) | : अरस्तू के अनुसार भावों को शुद्ध करने की प्रक्रिया रस : भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार साहित्य में भाव के आस्वादन को रस कहते हैं।                                                                                                                            |
| विश्वजनीन             | : सबके लिए उपयुक्त, सबके लिए लाभदायक।                                                                                                                                                                                                                         |
| लोक नाट्य शैली        | : लोक नाटक उन नाटकों को कहते हैं जिनका प्रचलन समाज में लोक परंपरा जैसे – उत्तर प्रदेश में खेला जाने वाला लोक नाटक नौटंकी या रामलीला या रासलीला, बंगाल में जात्रा। इन नाटकों में किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन नहीं होता। प्रस्तुति के नियम भी रुढ़ नहीं होते। |

## 1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

### बोध प्रश्न 1

- क) श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें सुना या पढ़ा जा सके। दूसरी श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें पढ़ने और सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता हो। नाटक दूसरी श्रेणी यानी दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है।
- ख) प्राचीन युग में यद्यपि नाटक को “दृश्य काव्य” कहा गया था किंतु आज यह गद्य के अंतर्गत आता है। हालाँकि पद्य नाटक भी लिखे जाते हैं किंतु मुख्यतः यह गद्य विधा ही है।
- ग) नाटक को देखकर दर्शकों पर जो तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है उसका अभिनेताओं पर मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है जो उनकी गतिविधियों और कला को प्रभावित करता है। इस तरह अभिनेताओं और दर्शकों के बीच स्थापित जीवंत संपर्क समग्र नाट्य प्रस्तुति पर प्रभाव डालता है।

### बोध प्रश्न 2

- क) i) घनिष्ठ संबंध, ii) बदलता, iii) गद्य
- ख) i) उपन्यास का पाठक उसे कई बैठकों में समाप्त कर सकता है इसलिए यदि उसका आकार बड़ा हो तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता यदि इन बैठकों में समय का काफी अन्तराल हो तो वह पिछले पृष्ठों को पलट कर देख भी सकता है। नाटक का दर्शक उसे एक बार में ही देखता है। यदि कोई अंतराल होता भी है तो वह कुछ मिनटों का होता है। अतः नाटक का आकार इतना होना चाहिए कि उसे एक बैठक में सुविधापूर्वक देखा जा सके।
- ii) नाटक को भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप प्रधान होता है क्योंकि नाटककार के शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। किंतु उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होती है। वहाँ संवाद लंबे हो सकते हैं। उनमें विवेचन विश्लेषण आदि की संभावना नाटक के संवादों की अपेक्षा ज्यादा होती है।

### बोध प्रश्न 3

- क) कथावस्तु दो प्रकार की होती है— आधिकारिक कथावस्तु और प्रासंगिक कथावस्तु। आधिकारिक प्रमुख कथावस्तु होती है जिसका संबंध नाटक की मूल घटनाओं और प्रधान पात्रों से होता है। प्रासंगिक कथावस्तु गौण कथावस्तु होती है। अन्य पात्रों से संबंधित होने के बावजूद यह आधिकारिक कथावस्तु से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती, बल्कि उसे आगे बढ़ाने में सहायक होती है।
- ख) नाटक की घटनाएँ दो तरह की होती हैं, दृश्य घटनाएँ और सूच्य घटनाएँ। जो घटनाएँ दशकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करके दिखाई जाती हैं वे दृश्य घटनाएँ कहलाती हैं। जो घटनाएँ सामने घटित होती दिखाई नहीं जाती केवल सूचित की जाती हैं, वे सूच्य घटनाएँ कहलाती हैं। समग्र नाट्य-व्यापार दोनों तरह की घटनाओं से मिलकर बनता है।
- ग) कथावस्तु की तीन स्थितियाँ होती हैं – आरंभ, विकास और परिणति। कार्य-व्यापार जहाँ शुरू की स्थिति है। कार्य आगे बढ़ने की प्रक्रिया विकास कहलाती है और अंत में कार्य जहाँ पहुँचता है यानी जो परिणाम मिलता है उसे परिणति कहते हैं।

#### बोध प्रश्न-4

- क) i) नायक — नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है।  
ii) नायिका — नाटक की प्रधान स्त्री पात्र नायिका कहलाती है।  
iii) खलनायक — नायक का विरोधी पात्र खलनायक होता है।  
iv) विदूषक — विदूषक हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करने वाला पात्र होता है।
- ख) परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश-विन्यास, विचारधारा, भाषा, शैली, संवाद, मंच सज्जा आदि के माध्यम से की जाती है।
- ग) नाटक में भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए उसमें बोलचाल की लय तथा तात्कालिक संप्रेषणीयता अपेक्षित होती है।
- घ) i) भिन्न स्थितियों और अवसरों पर हमारे वार्तालाप का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। परिवार, मित्र-मंडली, कार्यालय, विचार गोष्ठी आदि में हम अलग-अलग बातचीत और लहजे का इस्तेमाल करते हैं। ऐसी स्थिति में नाटक में भी संवाद, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिए।  
ii) जो संवाद मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए न होकर केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है उसे 'स्वगत कथन' कहते हैं।
- ङ) अभिनय के चार प्रकार हैं —  
1) आंगिक अभिनय — यानी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अभिनय  
2) वाचिक अभिनय — वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर अभिनय  
3) सात्विक अभिनय — विभिन्न भावनाओं की हाव-भाव पूर्ण अभिव्यक्ति  
4) आहार्य अभिनय — वेशभूषा, शृंगार और साज-सज्जा द्वारा अभिनय

#### बोध प्रश्न-5

- क) भारतेन्दु से पहले हिंदी में जो थोड़े बहुत नाटक मिलते हैं वे नाट्यकला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, साथ ही वे ब्रजभाषा में लिखित हैं। भारतेन्दु ने पहली बार जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को नाटक में प्रतिष्ठित किया। नाटक को जनप्रियता और कलात्मकता प्रदान करते हुए उसे समाज सुधार और नव-जागरण की चेतना का वाहक बनाया।
- ख) उन्होंने नाटक को प्राचीन भारतीय नाटक की परंपरा से जोड़ते हुए पश्चिमी नाट्य कला का भी समावेश किया। नाटक को रंगमंच से जोड़ा और रंग-प्रस्तुति के लिए नाट्य मंडलियाँ स्थापित कीं। पारसी नाटक की बुराइयों का विरोध करके जन रुचि का परिष्कार किया। मौलिक नाट्य लेखन के अलावा संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी से अनुवाद किए।
- ग) i) स्वच्छंदतावादी ii) इतिहास iii) नया प्रयोग  
iv) विवाद का विषय
- घ) हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मीनारायण मिश्र।

#### बोध प्रश्न-6

- क) 1) एकांकी लेखन की शुरुआत 2) नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास 3) लोक नाट्य शैलियों की लोकप्रियता 4) नुक्कड़ नाटकों की शुरुआत 5) कहानियों उपन्यासों आदि के नाट्य रूपांतरों की प्रस्तुतियाँ।

- ख) i) उपेन्द्रनाथ अशक' ii) जगदीशचंद्र माथुर iii) मोहन राकेश  
iv) लक्ष्मीनारायण लाल v) भीष्म साहनी
- ग) i) एकांकी लेखन के लिए ii) नाट्य निर्देशन के लिए  
iii) नाट्य निर्देशन के लिए iv) नाटककार के रूप में
- घ) i) छत्तीसगढ़ की 'नाचा', राजस्थान की 'ख्याल' और कर्नाटक की 'यक्षगान'  
ii) विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है'  
गिरीश कर्नाड का "तुगलक"  
बादल सरकार का "जुलूस"
- ङ) नुक्कड़ नाटकों के अभिनय के लिए किसी खास रंगमंच की जरूरत नहीं होती। गली मोहल्ले, पार्क आदि के किसी कोने में इनका अभिनय हो जाता है। ये नाटक जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उठा कर जन चेतना जाग्रत करते हैं। इसलिए इनमें जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

